



अध्याय ८

## तारक-ब्रह्म योग



अर्जुन उवाच ।

किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।  
अधिभूतं च कि प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ ८-१ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।  
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ ८-२ ॥

अर्जुन ने पूछा - हे पुरुषोत्तम, ब्रह्मन क्या है? स्व (आत्मा) क्या है? कर्म क्या है? यह भौतिक सृष्टि क्या है? देवतागण कौन हैं? यज्ञ के स्वामी कौन हैं और वे हमारे देह में कैसे निवास करते हैं? हे मधुसूदन, जो मृत्यु के समय आत्म-नियंत्रित होते हैं वे आपको कैसे जान पाते हैं?

~ अनुवृत्ति ~

अर्जुन अपने अत्यंत प्रिय मित्र और शुभचिंतक श्रीकृष्ण से, योग के संजीदा छात्र के लिए एवं इस विषय पर, जीवन की परिपूर्णता की कामना रखनेवाले किसी भी व्यक्ति की जानकारी के लिए, कई महत्वपूर्ण प्रश्न पूछते हैं। अध्यात्म के विषय पर लिखे गए साहित्यों में सबसे ज्यादा विद्वत्तापूर्ण साहित्य वेदांत-सूत्र इस वाक्य के साथ शुरू होता है, ॐ अथातो ब्रह्म जिज्ञासा - 'अब इस मनुष्य जीवन में व्यक्ति को ब्रह्मन (परम सत्य) की जिज्ञासा करनी चाहिए'। वास्तव में मनुष्य जीवन, ऐसे प्रश्नों की जानकारी के लिए बना है जैसा की अर्जुन ने पूछे हैं, और योग के परम गुरु, श्रीकृष्ण, अब उनका उत्तर सबसे संक्षिप्त रूप में देंगे। मनुष्य जीवन का उद्देश्य श्रीमद्भागवतम् में भी कुछ इस प्रकार वर्णित किया गया है -

कामस्य नेन्द्रिय-प्रीतिर् लाभो जीवेत यावता ।  
जीवस्य तत्त्व-जिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥

जीवन का उद्देश्य कभी भी इंद्रियों को तृप्त करने की इच्छा की ओर नहीं होना चाहिए। एक व्यक्ति को केवल स्वस्थ जीवन की कामना करनी चाहिए, क्योंकि मानव जीवन परम सत्य की खोज के लिए बना है। किसी भी व्यक्ति के कार्यकलाप का लक्ष्य कुछ और नहीं होना चाहिए। (श्रीमद्भागवतम् १.२.१०)

## श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीभगवानुवाच ।  
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।  
भूतभावोऽद्वकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ८-३ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया - ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मन अविनाशी परम-सत्य है, और आत्मा ही जीव का मूल आध्यात्मिक स्वभाव है। कर्म वह है जो जन्म, जीवन की अवधि और मृत्यु का कारण है।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।  
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभूतां वर ॥ ८-४ ॥

हे नरश्रेष्ठ, भौतिक प्रकृति वह है जो निरंतर परिवर्तनशील है, और यह भौतिक जगत परम पुरुष का ही विराट स्वरूप है। मैं ही सभी जीवों में स्थित, सभी यज्ञों का स्वामी हूँ।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।  
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ८-५ ॥

मृत्यु के समय, जो विशेष रूप से मेरा स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करता है, वह मेरी दिव्य प्रकृति को प्राप्त करता है - इसमें कोई संदेह नहीं है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।  
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ८-६ ॥

हे कुन्तीपुत्र, मृत्यु के समय व्यक्ति जिस भाव का स्मरण करता है, निश्चित ही वह उसी भाव को प्राप्त करता है।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।  
मर्यापितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ ८-७ ॥

अतएव, हे अर्जुन! तुम सदैव मेरा स्मरण करते हुए युद्ध करो। अपने मन एवं बुद्धि को मुझपर समर्पित करो, और इस तरह तुम निश्चित रूप से मुझे प्राप्त करोगे।

~ अनुवृत्ति ~

श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रश्नों का प्रासंगिक उत्तर देते हैं और यदि कोई श्रीकृष्ण को योग के परम-गुरु के रूप में स्वीकार करता है, जोकि वे सचमुच हैं, तो वह

शीघ्र ही सबसे अनमोल ज्ञान प्राप्त करता है। उचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए अटकलबाजी या ‘परीक्षण और त्रुटि’ की प्रक्रिया का उपयोग महज मूल्यवान समय को बर्बाद करना है। वास्तव में, अटकलों और प्रयोग में इतना समय बर्बाद होता है कि सदियों के बाद भी ऐसी प्रक्रियाएं जीवन के अर्थ का उचित ज्ञान देने में निष्फल रही हैं। हर कोई मृत्यु के मुंह में जा रहा है, और इनमें से अधिकांश जीवन के सबसे बुनियादी प्रश्नों के उत्तर जाने बगैर ही मर रहे हैं। हालाँकि, अनादि काल से, श्रीकृष्ण के पास इनके उत्तर हैं और उन्हें भगवद्गीता में यहां प्रस्तुत किया गया है।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि सभी जीवित प्राणी ब्रह्मन हैं - परम सत्य की आध्यात्मिक ऊर्जा का हिस्सा हैं - शाश्वत, वैयक्तिक, अविनाशी और अपरिवर्तनीय हैं। परन्तु, इस भौतिक दुनिया में हर किसी के शरीर की मृत्यु होती है। कोई छूट नहीं है। लेकिन जिनका मन और बुद्धि श्रीकृष्ण पर टृढ़ रहता है, वे इस भौतिक संसार में दोबारा जन्म नहीं लेते, बल्कि कृष्ण की अपनी दिव्य प्रकृति को प्राप्त करते हैं। श्रीकृष्ण स्वभाव से ही सत्-चित्-आनंद हैं, यानि के वे नित्य हैं, ज्ञान में पूर्ण हैं एवं आनंद से भरपूर हैं। मृत्यु के समय कृष्ण का स्मरण करने से व्यक्ति उस दिव्य प्रकृति को प्राप्त कर लेता है और तुरंत भौतिक जगत एवं जन्म और मृत्यु के ग्रहों से परे होकर कृष्ण के धाम पहुंच जाता है। जैसा कि कृष्ण अध्याय १५ में बताएंगे, जो उनके परम धाम को प्राप्त करता है वह इस भौतिक संसार में दोबारा नहीं लौटता।

जब हम संसार की बात करते हैं, तो हम वास्तव में पुनर्जन्म की ही बात करते हैं। यद्यपि, कई समुदायों में पुनर्जन्म एक लोकप्रिय धारणा बनती जा रही है, लेकिन अधिकांश भाग में इसे बहुत गलत समझा जाता है। बहुतों के लिए पुनर्जन्म का अर्थ है, मनुष्य के रूप में ही जन्म लेते रहना, लेकिन यह सत्य नहीं है। मनुष्य जीवन अत्यंत दुर्लभ है। ऐसा नहीं है की यह तेजी से एक के बाद एक आते रहता है। मनुष्य प्रजाति के ऊपर और नीचे सैकड़ों और हजारों अन्य जीवन की प्रजातियां हैं। इस जीवन के अपने कर्मों के अनुसार और मृत्यु के समय की अपनी अंतिम चेतना और मन की स्थिति के अनुसार, अगले जन्म का निर्धारण होता है।

मनुष्य से नीचे की प्रजातियों में, जैसे कि जानवर, जलीय जीव, कीट और पौधों में अत्यधिक अज्ञानता और पीड़ा होती है। मानवीय स्तर के ऊपर दैवी जीव और उनके स्वर्गीक सुख से भरे उच्च ग्रह हैं। तथापि, उच्च हो या निम्न, भौतिक

दुनिया में जीव के सभी स्थान अस्थायी ही होते हैं। भौतिक ब्रह्माण्ड में शाश्वत (सार्वकालिक) नरकवास या शाश्वत सुख कहीं नहीं पाया जाता। इस दुनिया में कुछ भी चिरस्थायी नहीं है। केवल कृष्ण का धाम ही आनंद एंव पीड़ा के द्वंद्वों से परे है।

कृष्ण ऊपर के ५ वें श्लोक में कहते हैं, अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुत्त्वा कलेवरम् - जो मृत्यु के समय उन्हें याद करता है वह उनके पारलौकिक स्वभाव को प्राप्त करता है। जीवन के अंतिम समय में कृष्ण को याद करना ही सच्ची सिद्धि है, और उन्हें भूलना सबसे बड़ी भूल है। विष्णु-धर्मोत्तर पुराण में कहा गया है -

स हानिस् तन्महाच्छिद्रम् स मोहः स च विभ्रमः ।  
यन् मुहूर्तम् क्षणम्वापि वासुदेवम् न चिन्तयेत् ॥

एक क्षण के लिए भी यदि श्रीकृष्ण का स्मरण चूक जाए, तो वही सबसे बड़ा नुकसान, सबसे बड़ा भ्रम और सबसे बड़ी विसंगति है। (विष्णु-धर्मोत्तरा पुराण १.१६)

यद्यपि, इस संसार के अनुभव से हम जानते हैं कि मृत्यु अक्सर दर्द, भ्रम और स्मृति की भ्रांति समेत ही होती है। इसलिए, ऐसा लगता है कि मृत्यु के समय श्रीकृष्ण को याद करना कोई आसान काम नहीं होता। मृत्यु किसी भी समय, बिना किसी सूचना के या नींद के दौरान भी तेजी से आ सकती है, अतः इस तरह श्रीकृष्ण का स्मरण करने में बाधा होती है। इस संबंध में कुलशोखर आलवार, अपने मुकुंद-माला-स्तोत्रम् में लिखते हैं -

कृष्ण त्वदीय पद पङ्कज पञ्चरान्तम् ।  
अद्यैव विशतु मे मानस राज हंसः ॥  
प्राण प्रयाण समये कफ वात पित्तैः ।  
कण्ठावरोधनविधौ स्मरण कुतस्ते ॥

हे कृष्ण, कृपया मुझे शीघ्र ही मृत्यु दें, ताकि मेरे मन का हंस आपके चरण-कमल के तने से घिर जाए। अन्यथा मेरी अंतिम सांस के समय, जब मेरा गला घुट रहा होगा, तब आपका स्मरण करना कैसे संभव होगा? (मुकुंद-माला-स्तोत्रम् ३३)

भक्ति-योगी के लिए श्रीकृष्ण उनके सभी प्रयास, साधना और सेवाओं को ध्यान में रखते हैं। यदि भक्ति-योगी मृत्यु के समय श्रीकृष्ण को याद करने में असमर्थ हो जाये, तभी भी श्रीकृष्ण उन्हें अवश्य याद करेंगे। श्रीकृष्ण कभी भी किसी भी परिस्थिति में भुलते नहीं हैं, अतः वे अपने भक्त को सहजता से मृत्यु के शिकंजे से मुक्त कर देते हैं। वराह पुराण में श्रीकृष्ण स्वयं इसकी पुष्टि करते हैं -

यदि वितादि दोषेण मद्भक्तो मां च न स्मरेत् ।  
अहं स्मरामि मद्भक्तः नयामि परमां गतिम् ॥

यदि मेरे भक्त मृत्यु के समय शरीर में हो रहे अत्याधिक विघ्न के कारण मुझे याद नहीं कर पाते हैं, तो उस समय मैं अपने भक्त को याद करूँगा और उन्हें आध्यात्मिक जगत ले जाऊँगा।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।  
परमं पुरुष दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८-८ ॥

हे पार्थ, जो योग का अभ्यास करता है और बिना अपने पथ से भटके, मन को केंद्रित करता है, एवं दिव्य परम-पुरुष पर ध्यान करता है, निश्चित ही वह उन्हें प्राप्त करता है।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयं समनुस्मरेद्यः ।  
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ८-९ ॥

व्यक्ति को परम-पुरुष पर ध्यान करना चाहिए जो सर्वज्ञ, पुरातन, एवं परम नियन्ता हैं, जो परमाणु के कण से भी छोटे किंतु समस्त जगत के मूल-आधार हैं, जिनका रूप अचिन्त्य है, जो सूर्य की भाँति कान्तिमान, और इस भौतिक प्रकृति से परे हैं।

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।  
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८-१० ॥

मृत्यु के समय, जो व्यक्ति योग शक्ति के प्रभाव से भौंहों के बीच प्राण-वायु को समेटकर, उनका (परम-पुरुष का) अविचलित मन से स्मरण करता है, वह निश्चित रूप से दिव्य परम पुरुष के निकट पहुंचता है।

~ अनुवृत्ति ~

यहाँ योग और ध्यान का वर्णन किया गया है। हालांकि, वे अवैयक्तिक या स्वकेंद्रित प्रक्रियाएं नहीं हैं। ध्यान परम-सत्य, श्रीकृष्ण पर करना चाहिए, अमूर्त कल्पनाओं पर नहीं कि हम स्वयं ही यथार्थ के कुल-योग के समकक्ष हैं, कि हम सर्वज्ञ हैंम या हम सर्वोच्च नियंत्रक हैं। ऐसी प्रक्रियाएं ध्यान नहीं होती, बल्कि स्वयं को धोखा देना है और यह मोक्ष या शाश्वत आनंद की ओर कभी नहीं ले जाती।

श्लोक १० में, श्रीकृष्ण कहते हैं कि योगिक ध्यान (अष्टांग और कुण्डलिनी-योग) में, व्यक्ति को भौंहों के क्षेत्र में अपने प्राणवायु को खींचना चाहिए। यह आज्ञा-चक्र के स्थान को इंगित करता है। शरीर में स्थित सात चक्र हैं जो मानव चेतना के प्राथमिक आसन होते हैं। चेतना पूरे शरीर में व्याप्त है, लेकिन कहा जाता है कि यह सात चक्रों में से एक में केंद्रित है - मूलाधार-चक्र (जननांग के आधार पर स्थित), स्वाधिष्ठान-चक्र (रीढ़ की हड्डी के आधार पर स्थित), मणिपूर-चक्र (नाभि क्षेत्र में स्थित), अनाहत-चक्र (हृदय में स्थित), विशुद्ध चक्र (गले में स्थित), आज्ञा-चक्र (भौंहों के बीच स्थित) और सहस्रार-चक्र (शीर्ष के उपर की छोड़ पर स्थित)।

जब चेतना निचले तीन चक्रों में स्थित होती है, तो व्यक्ति खाने, सोने, संभोग करने एवं बचाव करने की जानवरों की प्रवृत्ति में तल्लीन होता है। जब चेतना ऊपरी चक्रों में स्थित होती है, तो आध्यात्मिक संस्कृति की सूक्ष्म भावनाओं और अंततः मोक्ष की ओर प्रगति होती है। ध्यान में चेतना को एक चक्र से दुसरे चक्र में सुषुम्ना-नाड़ी नामक एक सूक्ष्म मार्ग के द्वारा उठाया जाता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि योगी को अपनी चेतना को आज्ञा-चक्र में लाकर स्थित करना चाहिए, कभी-कभी इसे योगी की तीसरी आंख के रूप में जाना जाता है। यहाँ योगी अपनी अंतिम तैयारी करता है और अंत में सुषुम्ना-नाड़ी के माध्यम से चेतना को सहस्रार-चक्र तक उठाता है और वहाँ से योगी अपने भौतिक शरीर का त्याग कर देता है। यदि अष्टांग-योगी या कुण्डलिनी-योगी, आज्ञा-चक्र में ध्यान केंद्रित करते हुए, श्रीकृष्ण को ध्यान का उद्देश्य बनाते हैं, तो सहस्रार-चक्र को पार करने के बाद, वे कृष्ण के परम धाम को प्राप्त करते हैं। यद्यपि, यदि उक्त योगी श्रीकृष्ण को अपने ध्यान का उद्देश्य नहीं बनाते हैं, तो वह कुछ समय के लिए ब्रह्म-ज्योति में प्रवेश कर सकते हैं, लेकिन अंततः वे इस भौतिक दुनिया में वापस लौट आते हैं।

योग की उपर्युक्त प्रक्रियाओं के लिए अतिमानवीय (दैविक) उद्यम चाहिए, और इस युग में सामान्य व्यक्ति के लिए, अधिकांश भाग में इसे कर पाना संभव नहीं है। अष्टांग-योग और कुण्डलिनी-योग का अभ्यास समाज से अलग पूर्ण एकांत में करना चाहिए, लंबे समय तक पूर्ण ब्रह्मचर्य और उपवास का पालन करना चाहिए। प्राचीन काल में ऐसे योगी हिमालय की पर्वत गुफाओं या रेगिस्तानों में जाते थे। आज के योगी आधुनिक स्टूडियो व सोसाइटीयों में अपनी चेतना को चक्रों के माध्यम से, सहस्रार-चक्र तक बढ़ाने में असमर्थ हैं, क्योंकि उनमें एकांतवास और कड़ी दृढ़ संकल्प की कमी रहती है। इसलिए, भगवद्गीता निर्णायक रूप से भक्ति-योग की प्रक्रिया की अनुसंशा करती है जिसका अभ्यास हर किसी के द्वारा, हर जगह, श्रीकृष्ण पर ध्यान केंद्रित करके किया जा सकता है और परम सिद्धि की प्राप्ति की जा सकती है।

कोई यह प्रश्न कर सकता है कि, चूंकि श्रीकृष्ण तृतीय पुरुष के स्थान से बोल रहे हैं, इसलिए वह स्वयं को ध्यान के उद्देश्य के रूप में संदर्भित नहीं कर रहे हैं और इसलिए इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि हमें श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए। परन्तु, भक्ति-योग के एक महान आचार्य स्वामी बी. आर. श्रीधर जी महाराज के अनुसार, जब श्रीकृष्ण तृतीय पुरुष के स्थान से बोलते हैं, तब वह ध्यान के उद्देश्य के रूप में अपने विस्तृत स्वरूप परमात्मा (परम चेतना) को संदर्भित कर रहे हैं। जैसा कि पहले से ही दूसरे अध्याय में बताया गया है, श्रीकृष्ण स्वयं को परमात्मा के रूप में प्रकट करते हैं, जो सभी जीवित प्राणियों के हृदय में स्थित हैं। अतएव परमात्मा पर ध्यान का अर्थ है श्रीकृष्ण पर ही ध्यान करना।

जो लोग अपने हृदय में संदेह (अनर्थ) के कारण परम सत्य को व्यक्तिगत (व्यक्ति) रूप में नहीं समझ सकते, वे ब्रह्मन (ब्रह्म-ज्योति) के रूप में श्रीकृष्ण के अवैयक्तिक पहलू का ध्यान कर सकते हैं। लेकिन यह प्रक्रिया कठिन है और इसका परिणाम सीमित है, क्योंकि एक ब्रह्मन-अनुभूत योगी को भी दोबारा इस जन्म और मृत्यु के संसार में लौटना पड़ता है।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।  
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सञ्चरेण प्रवक्ष्ये ॥८-११॥

संन्यास आश्रम में स्थित महान ऋषियों एवं वेदों के विद्वान ब्रह्मचर्य के व्रत को स्वीकार कर ब्रह्मन में प्रवेश करने के लिए ॐ का उच्चारण करते हैं। यह विधि अब मैं तुम्हे बताऊंगा।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।  
मूर्ध्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥८-१२॥

व्यक्ति को अपने सभी इंद्रियों को वश में कर, हृदयस्थित मन पर एकाग्रता धारण कर, प्राण-वायु को भौंहों के मध्य स्थित कर, स्वयं को पूर्णतः योग की स्थिति में स्थापित करना चाहिए।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।  
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥८-१३॥

इस प्रकार, सर्वोत्कृष्ट एकाक्षर ऊँ का जाप करते हुए और मेरा स्मरण करते हुए, जब कोई भौतिक शरीर का त्याग करता है, तब वह मेरा परम धाम प्राप्त करता है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।  
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥८-१४॥

हे पार्थ, जो योगी अनन्य भाव से सदैव मेरा स्मरण करता है उसके लिए मैं सुलभ हूँ, क्योंकि वह सदैव मेरे साथ जुड़ा रहता है।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।  
नामुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥८-१५॥

जिन महापुरुषों ने मुझे प्राप्त कर लिया है वे कभी भी दुःखों से पूर्ण इस अनित्य जगत में जन्म नहीं लेते, क्योंकि उन्हें परम सिद्धि प्राप्त हो चुकी होती है।

~ अनुवृत्ति ~

योग की आधुनिक प्रणालियाँ, कम या अधिक मात्रा में, केवल शरीर की स्वस्थ स्थिति प्राप्त करने के लिए ध्यान केंद्रित करती हैं, लेकिन वास्तव में यह योग का उद्देश्य नहीं है। योग की प्रक्रिया का केवल एक ही लक्ष्य है - जन्म और मृत्यु के इस भवसागर को पार करना। निस्सन्देह, अवश्य ही एक से अधिक योग की प्रणालियाँ हैं, लेकिन योग के सभी संप्रदायों का एक ही लक्ष्य है - मोक्ष की प्राप्ति। जैसा कि पहले से ही पिछली टिप्पणियों में बताया गया है, ऊँ मंत्र व्यक्ति को मुक्ति के चरण तक उठाती है। तथापि, यहां इस बात पर भी ध्यान दिया

जाना चाहिए कि मंत्रों के जप से पहले योग के विभिन्न अंगों का अभ्यास, जैसे कि इन्द्रियों को वश में रखना, और ब्रह्मचर्य का पालन करना, मंत्रों के प्रभावी होने के लिए आवश्यक हैं।

मंत्र इन्द्रियों के भोग से उत्पन्न भौतिक सम्पर्कविकार के दोष को हृदय और मन से शुद्ध करते हैं। यदि कोई शुद्धिकरण के लिए प्रयास करता है, लेकिन साथ ही साथ इंद्रियों को नियंत्रित नहीं करता, तो यह वैसा ही है जैसे की एक तरफ आग को जलाना और दुसरी तरफ उस पर पानी डाल देना। इसलिए किसी भी रूप में योग का अभ्यास करने वालों के लिए अपने इन्द्रियों को वश में करना आवश्यक है।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।  
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ८-१६ ॥

हे कुन्तीपुत्र! ब्रह्मलोक तक के सभी ग्रह जन्म और पुनर्जन्म के स्थान हैं, किन्तु जो मेरे पास पहुंच जाते हैं, वे फिर कभी जन्म नहीं लेते।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।  
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ ८-१७ ॥

ब्रह्मा के एक दिन में एक हजार युग होता है, और उनकी रातें भी उसी अवधि तक रहती हैं।

अव्यक्ता व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।  
राज्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ ८-१८ ॥

ब्रह्मा के दिन की शुरुआत में, सभी वस्तुएं अव्यक्त अवस्था से व्यक्त (प्रकट) हो जाते हैं। जब ब्रह्मा की रात्रि शुरू होती है, पुनः वे अव्यक्त हो जाते हैं।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।  
राज्यागमेऽवशः पार्थं प्रभवत्यहरागमे ॥ ८-१९ ॥

हे पार्थ, सभी जीव बारंबार जन्म लेते हैं। जब ब्रह्मा की रात निकट आती है तब वे मुझमे समा जाते हैं, और ब्रह्मा के दिन के आगमन के साथ वे पुनः जन्म लेते हैं।

परस्तस्मात् भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।  
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सुन विनश्यति ॥८-२०॥

परन्तु, इस अवस्था के परे एक और अव्यक्त अवस्था है जो शाश्वत है और अन्य सभी जीवों के नष्ट हो जाने पर भी वह नष्ट नहीं होता।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।  
यं प्राप्य न निर्वर्तन्ते तद्वाम परमं मम ॥८-२१॥

कहा जाता है कि यह अवस्था अव्यक्त एवं शाश्वत है, और इसे ही परम गंतव्य के रूप में बताया गया है, जिसके प्राप्ति के पश्चात कोई लौट कर नहीं आता। यही मेरा परम धाम है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्या ।  
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥८-२२॥

हे पार्थ, वह परम पुरुष, जिसके भीतर सभी जीव स्थित हैं और जो संपूर्ण सृष्टि को व्याप्त करते हैं, वे केवल अनन्य भक्ति-योग द्वारा ही प्राप्त किए जा सकते हैं।

~ अनुवृत्ति ~

भौतिक ब्रह्माण्ड का सर्वोच्च लोक, सत्य-लोक के नाम से जाना जाता है, जो ब्रह्मा का धाम (निवास स्थान) है। उस लोक पर जीवन बहुत ही लंबा है - सत्य-लोक में एक दिन पृथ्वी के ४,२६०,०००,००० वर्षों के बराबर है। हालाँकि, वहाँ भी मृत्यु होती है। भौतिक जगत में कोई भी स्थान मृत्यु से मुक्त नहीं है।

ब्रह्मा के प्रत्येक दिन के अंत में ब्रह्मांड में आंशिक विनाश और ब्रह्मा के जीवन के अंत में ब्रह्मांड का सम्पूर्ण विनाश हो जाता है। आंशिक विनाश को प्रलय कहा जाता है, और अंतिम विनाश को महा-प्रलय कहा जाता है। ब्रह्मांड के प्रत्येक वस्तु की एक शुरुआत और एक अंत होती है। सभी चीजें अस्तित्व में आती हैं और अंततः वे नष्ट हो जाती हैं। सृजन, सत्र (अवधि) और विनाश, ब्रह्मांड के तीन मूल चरण हैं, तब भी, भगवद्गीता सर्वनाश से संबंधित भविष्यसूचक दृष्टिकोण को, या “अंतिम समय” के परिदृश्य (जो कहता है कि अंत मे हम सभी का न्याय किया जाएगा) को नहीं मानता।

सृजन, पालन और विनाश के मुख्य देवता क्रमशः तीन गुणावतार, ब्रह्मा, महा-विष्णु और महेश (शिव) हैं। ब्रह्मा माध्यमिक सृष्टि की रचना करते हैं, महा-विष्णु सृष्टि के पालनकर्ता और शिव अपने डमरू से कंपन ध्वनि उत्पन्न करके, विनाश का कारण बनते हैं। ये गुणावतार, सभी अवतारों की उत्पत्ति के स्रोत (अवतारी) श्रीकृष्ण के विस्तृत स्वरूप के अंश हैं। आंशिक और पूर्ण विनाश की अवधि के दौरान, जीवआत्माएं महा-विष्णु के शरीर के भीतर निद्रावस्था में होते हैं, और फिर से ब्रह्माजी के दिन के आगमन पर प्रकट हो जाते हैं। यह प्रक्रिया ब्रह्मांडीय समयानुसार बार-बार दोहराया जाता है जब तक कि ब्रह्माजी अपने जीवन के अंत तक नहीं पहुंच जाते, जब पूरा ब्रह्मांड फिर से महा-विष्णु के शरीर में समा जाता है। भौतिक ब्रह्माण्ड, और सचमुच ऐसे अरबों एवं खरबों ब्रह्माण्डों की सृष्टि के लिए आवश्यक सभी वस्तुएं, महा-विष्णु द्वारा महत्तत्व (भौतिक तत्वों का समुच्चय) के रूप में प्रदान किया जाता है, और विनाश के समय फिर से यह ऊर्जा महा-विष्णु में लीन हो जाती है।

ऊर्जा न तो उत्पन्न होती है और न नष्ट होती है, क्योंकि यह कृष्ण की अपराप्रकृति - निम्न भौतिक ऊर्जा, के रूप में सदैव अस्तित्वमान रहती है। यह ऊर्जा निरंतर परिवर्तनशील, व्यक्त और अव्यक्त होती है, लेकिन अंततः यह कभी भी नष्ट नहीं हो सकती। श्रीकृष्ण और उनकी सभी ऊर्जाएं (शक्तियां) शाश्वत हैं।

एक बार फिर से, कृष्ण द्वारा वही बात दोहराई जा रही है, कि उनका परम धाम भौतिक प्रकृति से परे है, शाश्वत रूप से प्रकट रहता है, जन्म और मृत्यु से परे है, और एक बार वहां जाने के बाद कोई भी व्यक्ति वापस नहीं लौटता। कृष्ण का वह परम धाम गोलोक वृदावन है, और यह भक्ति-योग की प्रक्रिया से ही प्राप्य है। इस परम धाम का उल्लेख बृहद्भागवतामृतम् में इस प्रकार है -

गोलोक-नामोपरि सर्व-सीम-गो ।  
वैकुण्ठतो देशविशेषशेखरः ॥  
स च तद् ब्रज-लोकानां श्रीमत्-प्रेमानुवर्तिना ।  
कृष्णे शुद्धतरेणैव भावेनैकेन लभ्यते ॥

इस भौतिक ब्रह्माण्ड से दूर, श्रीकृष्ण का सौन्दर्ययुक्त रमणीय निवास स्थान है, जिसे वैकुंठ के सर्वोच्च लोक, गोलोक वृदावन के नाम से जाना जाता है। गोलोक केवल भक्ति-योग के माध्यम से उन्हें प्राप्त होता है, जो

## श्रीमद्भगवद्गीता

ब्रजवासीयों के नक्शेकदम पर चलते हैं, जिन्हें श्रीकृष्ण से शुद्ध प्रेम होता है।  
(ब्रह्मागवतामृतम् २.५.७८-७९)

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।  
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥८-२३॥

हे भरतश्रेष्ठ! अब मैं उन विभिन्न कालों को बताऊँगा, जिनमें इस संसार से प्रस्थान करने के बाद योगी मुक्ति या पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं।

अग्नियोत्तिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।  
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥८-२४॥

जो ब्रह्मज्ञानी हैं, वे अग्नि और ज्योति के पथ पर, शुक्लपक्ष में, या सूर्य के उत्तरायण की अवधी के उन छह मासों में, इस संसार से गुजर जाने के बाद ब्रह्मज्योति को प्राप्त करते हैं।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।  
तत्र चान्द्रमसंज्योतिर्योगी प्राप्य निर्वर्तते ॥८-२५॥

जो योगी धुएँ के पथ पर, रात्रि में, कृष्णपक्ष में, या सूर्य के दक्षिणायन की अवधि के छह महीनों में, इस संसार का त्याग करते हैं, वे चन्द्रलोक पहुंचते हैं, किन्तु वहाँ से पुनः लौट आते हैं।

शुक्लकृष्णो गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।  
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥८-२६॥

प्रकाश और अंधकार के इन दोनों मार्गों को इस संसार में स्थायी रूप में स्वीकार किया जाता है। एक मार्ग (प्रकाश का मार्ग) से व्यक्ति लौटकर नहीं आता, किन्तु दुसरे मार्ग (अंधकार का मार्ग) से वह पुनः लौटकर आता है।

नैते सूती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।  
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥८-२७॥

जो योगी इन दोनों मार्गों को जानता है वह कभी व्यग्र नहीं होता। इसलिए हे अर्जुन, हर समय योग में नियत रहो।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसुचैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।  
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥८-२८॥

यह जानते हुए, एक योगी वेदों के अध्ययन के माध्यम से, यज्ञ में आहुति देने से, तपस्या करने से, और परोपकार से प्राप्त किए गए सभी प्रकार के पुण्य परिणामों से परे हो जाता है। वह योगी परम सनातन धाम प्राप्त करता है।

~ अनुवृत्ति ~

भौतिक जगत में उच्च लोकों की प्राप्ति के लिए वेदों का अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानकार्य करना आवश्यक होता है। जो व्यक्ति इन कार्यों को करता है, उसका पुनर्जन्म उच्च लोकों में होता है, जहां वह एक लंबा जीवन व्यतीत करता है, जहां वह हजारों वर्षों तक भोग विलास का आनंद लेता है।

परन्तु, एक भक्ति-योगी को उच्च लोकों में भोग-विलास की कोई इच्छा नहीं होती है। वह यज्ञ, तपस्या आदि के सभी लाभों को श्रीकृष्ण पर आत्मसमर्पण करके उन्हें आसानी से प्राप्त कर लेता है। एक भक्ति-योगी को भौतिक शरीर को छोड़ने के लिए शुभ समय का चयन करने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह सदैव श्रीकृष्ण की शरण में रहता है। जो कृष्ण के शरण में रहते हैं उनके लिए सब कुछ मंगलमय रूप से विहित होता है, जो उन्हें श्रीकृष्ण के नित्य धाम तक पहुंचने में सक्षम बनाता है।

लेकिन जो योगी भक्ति-योग में नहीं होता, वह ना तो श्री कृष्ण के नित्य धाम पहुंचता है और न वह आसानी से मृत्यु के पश्चात उच्च लोकों की प्राप्ति करता है। वास्तव में, योगी को अपने मृत्यु के समय का चयन करना होता है, ताकि वह अपने शरीर का त्याग सबसे मंगलमय समय में कर सके। उसे बुद्धिमानी से चयन करना होगा, अन्यथा फिर भूलोक में उसका पुनर्जन्म निश्चित है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि विशेषकर साधारण लोगों के लिए यह लगभग एक असंभव प्रस्ताव है। अतएव, केवल भक्ति-योगी ही निश्चित रूप से इसमें सफल होते हैं।

## श्रीमद्भगवद्गीता

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां  
वैयासिक्यां भीष्मपर्वाणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु  
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे  
तारकब्रह्मयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥

ॐ तत् सत् - अतः व्यास विरचित शतसहस्र श्लोकों की श्री महाभारत ग्रन्थ के भीष्म-पर्व में पाए जाने वाले आध्यात्मिक ज्ञान का योग-शास्त्र - श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद से लिए गए तारक-ब्रह्म योग नामक आठवें अध्याय की यहां पर समाप्ति होती है।

